तित्थयर

पंचदश वर्ष : अप्रैल १९९२ : द्वादश अंक

जैन भवन

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १५ : अंक १२

अप्रैल १९९२

☐

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

☐

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

☐

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

☐

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

जैनधर्म के प्रभावक पुरुष एवं नारियाँ	३५५
त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र	३६९
संकलन	३७८
जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या	३७९

तीर्थंकर, मोसक्कुडि

जैनधर्म के प्रभावक पुरुष एवं नारियाँ

डा० नेमिचन्द्र शास्त्री

[पूर्वानुवृत्ति]

जैन शासनकी उन्नति करनेवालोंमें परमार्हत् कुमारपालका नाम उल्लेखनीय है। इस राजाका राज्याभिषेक वि० सं० ११६४ में मार्गशीष कृष्ण चतुर्दशीको सम्पन्न हुआ। इसका राज-जीवन मौर्य सम्राट् अशोकके तुल्य है। राज्यासीन होनेपर जिस प्रकार सम्राट् अशोकको अनिच्छापूर्वक प्रतिपक्षी राजाओंके साथ युद्ध करना पड़ा उसी प्रकार कुमारपालको भी। आठ-दश वर्षके युद्धोपरान्त जीवनके शेष भागमें जिस प्रकार अशोकने प्रजाकी नैतिक और सामाजिक उन्नतिके लिए राजाज्ञाएँ प्रचारित कीं और राज्यमें शान्ति एवं सुव्यवस्था बनाए रखनेका यत्न किया उसी प्रकार कुमारपालने भी। कुमारपालने अशोकके समान ही प्रजाको धार्मिक और नैतिक बनानेका श्लाघनीय प्रयत्न किया है।

निःसन्देह कुमारपाल अपने अन्तिम जीवनमें श्रमणोपासक था। उसने श्रावकके द्वादश व्रतोंका पूर्णतया आचरण किया है। सोमप्रभाचार्य और यशपालकी रचनाओंसे स्पष्ट अवगत होता है कि कुमारपालने वि० सं० १२१६ में हेमचन्द्राचार्यके पास सकल जन समक्ष जैनधर्मकी गृहस्थ दीक्षा धारण की थी और निम्नलिखित प्रतिज्ञाएँ ग्रहण की थीं—

१. राज्य रक्षाके निमित्त युद्धके अतिरिक्त यावज्जीवन किसी प्राणीकी हिंसा न करना।
२. आखेट—शिकार न खेलना।
३. मद्य-मांसका सेवन नहीं करना।
४. प्रतिदिन जिन प्रतिमाकी पूजा-अर्चना करना।
५. हेमचन्द्राचार्यका पद-वन्दन करना।
६. अष्टमी और चतुर्दशीके दिन सामायिक और पौषध आदि विशेष व्रतोंका पालन करना।
७. रात्रि-भोजन न करना।
८. स्वदारसन्तोष व्रत धारण करना और परस्त्रीका त्याग करना।
९. वेश्या सेवन आदि व्यसनों का त्याग करना।
१०. अभ्यासके लिए अनशनादि तपोंका आचरण करना।

कुमारपालने प्रजा-हितके लिए कई नियमोंका प्रचलन किया। उसने निर्वंशके धनका त्याग कर एक नया आदर्श उपस्थित किया। प्राचीन कालकी राजनीतिके अनुसार निर्वंश पुरुषकी सम्पत्ति उसके मरनेके बाद राजाकी हो जाती थी और इस कारण मरने वालेकी माता, स्त्री आदि आश्रित व्यक्ति अनाथ होकर भटकते थे और मृत्युसे भी अधिक दुःख भोगते थे। इस क्रूर राजनीतिके कारण अबलाएँ जीवित रहने पर भी मृतके समान थीं।

हेमचन्द्रके द्वयाश्रय काव्यकी सूचनासे यह स्पष्ट है कि कुमारपालने उक्त प्रथाके दोषको अवगतकर इसे कानूनन बन्द करा दिया था। मन्त्री यशपालके नाटकसे भी इस तथ्यकी पुष्टि होती है।

श्रावकके व्रत ग्रहण करनेके पश्चात् कुमारपालने अपने राज्यमें जीव हिंसा पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। कहा जाता है कि शाकम्भरीके चाहमान राजा अर्णोराज और मालवाके परमार राजा बल्लाल देवको पराजित करनेके पश्चात् एक दिन कुमारपालने मार्गमें किसी दीन दरिद्र ग्रामीण मनुष्यको कुछ बकरे कसाईखानेकी ओर ले जाते देखा। उससे पूछ-ताछ की और वस्तु-स्थितिका ज्ञान होनेपर उनके मनमें बोधिसत्वके समान करुणाभाव उत्पन्न हुआ। उसने अपने अधिकारियोंको आज्ञा दी कि मेरे राज्यमें कोई भी जीव हिंसा करे उसे चोर और व्यभिचारीसे भी अधिक कठोर दण्ड दिया जाय। इस प्रकार भोजनके निमित्त होनेवाली जीव हिंसाको बन्द करा दिया।

कुछ प्रबन्ध काव्योंसे ज्ञात होता है कि पाटनकी अधिष्ठात्री कण्ठेश्वरी माताके राजपुजारियोंने कुमारपालको पशुबलि करनेके हेतु बाध्य करना चाहा। उन्होंने बताया कि नवरात्रिमें नगरदेवीकी पशुबलि द्वारा पूजा होनी चाहिए अन्यथा देवी कुपित हो जायगी और उसके कोपसे राजा एवं राज्यपर भयानक आपत्तियाँ आ जायेंगी। कुमारपालने अपने महामात्य वाग्भट्टसे इस सम्बन्धमें परामर्श किया। वाग्भट्टने भी देवीके कोपसे भयभीत हो बलिदान करनेकी सम्मति दी। राजाने व्याकुल हो हेमचन्द्र सूरिसे इस सम्बन्धमें परामर्श किया और उनकी सम्मतिके अनुसार बलिपूजाके अवसरपर वह थोड़ेसे पशुओंको साथ लेकर माता कण्ठेश्वरीके मन्दिरमें पहुँचा और पुजारियोंसे कहने लगा कि मैं ये पशु माताको बलि चढ़ानेके लिए लाया हूँ। मैं इन्हें जीवित ही माताको अर्पित करता हूँ। यदि माताको इनके मांसकी आवश्यकता होगी तो वह स्वयं ही इन्हें अपना भक्ष्य बना लेंगी। इतना कहकर राजाने माताके मन्दिर में पशुओंको बन्द कर दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल राजपरिवारके साथ राजा

आया और सहस्र व्यक्तियोंकी उपस्थिति में उसने माताके मन्दिरका दरवाजा खोला। सभी पशु माताके मन्दिरमें आनन्दपूर्वक जीवित मिले। राजा कुमारपालने सभीको सम्बोधित करते हुए कहा कि माता को पशु मांसकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है। यह प्रथा तो स्वार्थी पुजारियोंने प्रचलित की है। देवी देवता बलि नहीं चाहते। इस प्रकार राजाने पशु बलिके निमित्त होनेवाली जीवहिंसाका उच्छेद किया। कुमारपालने जीवहिंसा, मद्यपान, द्यूत सेवन, वेश्या व्यसन आदिको अपने राज्यमें बन्द कर दिया। हेमचन्द्र द्वारा रचित कुमारपालचरितसे उसकी व्यवस्थित दिनचर्याका परिज्ञान होता है। यह विद्याप्रेमी और साहित्य-रसिक था। हेमचन्द्र द्वारा रचित योगशास्त्र और वीतराग स्तोत्रका प्रतिदिन स्वाध्याय करता था। आचार्य हेमचन्द्रने "त्रिषष्टिशालाका पुरुष" चरितकी रचना कुमारपालकी प्रेरणासे ही की है। उसने राज्य प्राप्तिके पश्चात् संघ सहित गिरनारकी यात्रा भी की थी।

प्रबन्धकारोंके अनुसार कुमारपालकी राजाज्ञा उत्तरमें तुरुस्क लोगोंके प्रान्त तक, पूर्वमें गंगा नदीके किनारे तक, दक्षिणमें विन्ध्याचल तक और पश्चिममें समुद्र तक मानी जाती थी। यह धर्मवीर, दानवीर और युद्धवीर था। इसने अपने राज्यकाल में जैन धर्मकी सर्वाङ्गीण उन्नति करनेका प्रयास किया है।

जिन शासनकी उन्नति करने वालोंमें विमल मन्त्री और वस्तुपाल एवं तेजपालके नाम उल्लेख्य हैं। मारवाड़के श्रीमाल नामक नगरमें प्राग्वाट जातिका नीना नामक एक करोड़पति सेठ्ठी निवास करता था। यह अत्यन्त सदाचारी और परम श्रावक था। काल प्रभावसे धन क्षय होनेपर यह श्रीमालको छोड़कर गांमु नामक स्थानपर आया, वहाँ पुनः समृद्धि प्राप्त की। नीनाको लहर नामक विद्वान् पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने पर्याप्त धनार्जन किया। वि० सं० ८०२ में बनराज चावड़ाने अणहिलपुर पाटन नामक नगर बसाया। इसने नीना सेठ एवं उसके पुत्र लहरको भी अणहिलपुर पाटन बुला लिया। लहरको शूरवीर समझ कर उसे अपनी सेनाका सेनापति नियत किया। लहरने बड़ी योग्यतासे सेनाका संचालन किया जिससे प्रसन्न होकर वनराज चावड़ाने उनको सण्डस्थल नामक ग्राम भेंटमें दिया। लहरके वंशमें वीरका जन्म हुआ और इस वीरके दो पुत्र हुए—नेढ़ और विमल। नेढ़ अणहिलपुर पाटनके राज्य सिंहासनाधिपति गुर्जर देशके चौलुक्य महाराज भीमदेवका मन्त्री था। विमल अत्यन्त कार्यदक्ष, शूरवीर और उत्साही था। इसी कारण महाराज भीमदेवने उसको सेनापति नियत किया। विमलने भीमदेवकी आज्ञाके अनुसार अनेक संग्रामोंमें

विजय प्राप्त की। यही कारण था कि महाराज भीमदेव उसपर सदैव प्रसन्न रहते थे। विमलने परमार घंघुरुको बड़ी ही बुद्धिमानीसे भीमदेवका अनुचर बनाया, जिससे भीमदेव उसपर और भी अधिक प्रसन्न हो गये।

विमलने अपने उत्तरार्ध जीवनमें चन्द्रावती और अचलगढ़को अपना निवास स्थान बनाया और चन्द्रावतीमें धर्मघोष सूरिका चातुर्मास कराया और इनके उपदेशसे आबू पर्वतपर विमल बसहि नामक मन्दिर बनवाया। इस मन्दिरकी भूमिके खरीदनेमें अपार धन व्यय हुआ। विमल बसहि अपूर्व शिल्प कलाका उदाहरण है। यह संगमर्मर पाषाणसे बनाया गया है। गूढ़ मण्डप, नव चौकियाँ, रंगमण्डप तथा ५२ जिनालयादिसे सुशोभित है। मन्दिरकी प्रतिष्ठा विमलने वर्धमान सूरिके कर कमलों द्वारा वि० सं० १०८८ में करायी। विमल सेनापति अत्यन्त धर्मात्मा और धर्मप्रेमी था। उसने आबू पर्वतपर कलापूर्ण मन्दिरका निर्माण कर अक्षय यश प्राप्त किया है।

जैनधर्मका प्रचार और प्रसार करने वालोंमें वस्तुपाल और तेजपालका नाम भी आदरके साथ लिया जाता है। वस्तुपाल प्राग्वाटवंशी था। इस वंशमें चण्डप नामक प्रसिद्ध वीर हुआ जिसके पुत्रका नाम चण्डप्रसाद था। चण्डप्रसादके पुत्रका नाम सोम था जो सिद्धराज जयसिंहका सामन्त था। सोमने जैनधर्म स्वीकार कर लिया था। सोमका पुत्र अश्वराज हुआ और इस अश्वराजके तीन पुत्र हुए—मालदेव, वस्तुपाल और तेजपाल। वस्तुपालने यात्रा संघ निकाला था। इसकी ललिता देवी और बेजलदेवी नामकी दो धर्मपत्नियाँ थीं। ललिता देवीकी कुक्षिसे जयन्त सिंहका जन्म हुआ जो पिताके समान वीर और प्रतिभाशाली था।

महामात्य तेजपालकी भी दो पत्नियाँ थीं—अनुपमदेवी और सुहडा देवी। अनुपम देवीकी कुक्षिसे महाप्रतापी, प्रतिभाशाली और उदार हृदय लूड़सिंह नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। यह राज-कार्यमें भी निपुण था। यह पिताके साथ अथवा अकेला भी युद्ध, सन्धि, विग्रहादि कार्योंमें भाग लेता था।

गुजरातकी राजधानी अणहिलपुर पाटनका उत्तराधिकार भीमदेव द्वितीयको प्राप्त हुआ। उस समय गुजरातके धोलकामें महामण्डलेश्वर सोलंकी अर्णोराजका पुत्र लवणप्रसाद राजा था और उसका पुत्र वीरधवल युवराज। ये दोनों भीमदेवके मुख्य सामन्त थे। महाराज भीमदेव इन पर बहुत प्रसन्न थे। इस कारण उन्होंने अपनी राज्य सीमाको बढ़ाने और सम्हालनेका कार्य लवणप्रसादको सौंपा और वीर धवलको अपना युवराज बनाया। इन्हीं वीर धवलके

मन्त्री वस्तुपाल और तेजपाल थे। मंत्री वस्तुपाल और तेजपालने कई युद्ध किये और बुद्धिबलसे उनमें विजय प्राप्त की।

महामात्य वस्तुपाल और तेजपालने अनेक तीर्थ स्थानोंकी यात्रा की और आबू पर्वतपर लूड़ बसहि नामक कलापूर्ण मन्दिर बनवाया। वस्तुपालके लघुभ्राता तेजपालने अपनी धर्मपत्नी अनुपम देवी और उसके गर्भसे उत्पन्न पुत्र लवण्य सिंहके कल्याणके लिए आबू पर्वतस्थ देलवाड़ा ग्राममें विमल बसहि मन्दिरके पास ही उत्तम कारीगरी सहित संगमर्मरका गूढ़मण्डप, नव चौकियाँ, रंगमण्डप, बालानक, खत्तक, जगति एवं हस्तिशालादिका निर्माण कराया।

लूढ़सिंह बसहि नामक भव्य मन्दिर करोड़ों रुपये व्यय कर तैयार कराया गया है। इस मन्दिर और देहरियोंकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् १२८७ से वि० सं० १२६३ तक होती रही है। इस मन्दिरकी नक्काशीका काम विमल बसहि जैसा ही है। मन्दिरकी दीवालें, द्वार, बारसाख, स्तम्भ, मण्डप, तोरण और छतके गुम्बज आदिमें न केवल फूल, झाड़, बेलबूटे और झूमर आदि विभिन्न प्रकारकी विचित्र वस्तुओंकी खुदाई की है, बल्कि गज, अश्व, उष्ट्र, व्याघ्र, सिंह, मत्स्य, पक्षी, मनुष्य और देव, देवियोंकी नाना प्रकारकी मूर्त्तियाँ उत्कीर्णित हैं। इस प्रकार वस्तुपाल तेजपालने मन्दिरका निर्माण कराकर अपना नाम अमर किया है।

प्रभावनाके कार्य करने वालोंमें धरणाशाहका नाम भी गणनीय है। इसके पिताका नाम कुरपाल और दादाका नाम सांगण था। माताका नाम कमिल या कर्पूरदे था। ये दो भाई थे—रत्ना और धरणा। ये दोनों भाई धार्मिक प्रवृत्तिके थे और इनका निवास स्थान सिरोहीका नदिया ग्राम था। कालान्तरमें ये मालवा चले गये और वहाँसे टेबाड़में कुम्बलगढ़के समीप मालगढ़ में आ बसे। यहाँ इन्होंने रणकपुरका जैन मन्दिर बनवाया। इन्होंने अजाहरि सालेरा और पिण्डवाड़ामें कई धार्मिक कार्य कराये। इनके धार्मिक कार्योंका निर्देश वि० सं० १४६५ के पिण्डवाड़ाके लेखमें और वि० सं० १४६६ के रणकपुरके अभिलेखमें पाया जाता है। धरणाशाहके भाई रत्नाके वंशज सालिमने वि०सं० १५६६ में आबूमें प्रसिद्ध चतुर्मुख आदिनाथ जिनालय बनवाया था।

इसके अतिरिक्त देलवाड़ाका पिछोलिया परिवार जिनके वि० सं० १४६४ और वि० सं० १५०३ के अभिलेख मिले हैं, अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये हैं।

तीर्थमाला स्तवनमें "मेघवीसल केल्हहेम सद्भीम निंबकटुकाद्यु-पासकैः" वर्णित है, जो देलवाड़ाके उल्लेखनीय श्रेष्ठि थे। इनमें केल्हका पुत्र

सुरा वि० सं० १४८६ में जीवित था। जिनका उल्लेख 'सोम सौभाग्य' काव्यके ८ वें सर्ग में आया है। यह संघपति था और इसने भुवन सुन्दरको सूरिपद दिलानेके लिए उत्सव कराया था। मेघ और वीसलने भी जैन धर्मके प्रचार और प्रसारमें योगदान दिया है।

धरणाशाह द्वारा स्थापित गोड़वाड़में सादड़ीवाड़ के समीप अरावलीकी छायामें स्थित रणकपुरका जैन मन्दिर उत्तरी भारतके श्वेताम्बर जैन मन्दिरोंमें अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इस मन्दिरमें वि० सं० १४९६ का एक अभिलेख है, जिसमें धरणाशाह और उसके पूर्वजोंका परिचय विस्तारपूर्वक दिया गया है। इस परिवार द्वारा गुणराज श्रेष्ठिके साथ यात्रा और पिण्डवाड़ा सालेरा आदि स्थानोंमें मन्दिरोंका जीर्णोद्धार कराना भी वर्णित है। मन्दिर निर्माणके सम्बन्धमें बताया है कि एक बार सोमसुन्दर सूरि बिहार करते हुए रणकपुर आये। वहाँ श्रेष्ठि धरणाशाहने बड़ा स्वागत किया तथा उनके आदेश पर ही रणकपुरमें मन्दिर बनवाया, जो कि वि०सं० १५१६ तक चलता रहा। "सोम सौभाग्य काव्य" से ज्ञात होता है कि धरणाशाहने इस मन्दिरकी प्रतिष्ठाके समय बड़ा महोत्सव सम्पन्न किया था। अनेक नगर और ग्रामोंमें कुमकुम पत्रिकाएँ भेजी गयीं। इस प्रतिष्ठामें ५२ बड़े संघ और ५५२ साधु सम्मिलित हुए थे। सारा मन्दिर सजाया गया और दक्षिण सिंहद्वारके बाहर आचार्य सोमसूरि के दर्शनार्थ सहस्र लोग एकत्र हुए। पूर्वी सिंहद्वार के बाहर वैताढ्य गिरिका मनोहारी दृश्य निर्मित किया गया था। इसी महोत्सवमें सोमदेवको वाचकपद दिया गया। इस मन्दिरके उत्तरी-पूर्वी कोणमें एक मूर्ति धरणाशाहकी भी है। इनके हाथमें माला, सिरपर पाग और गलेमें उत्तरीय है।

जैन धर्मके प्रचारकोंमें रामदेव नवलखाका नाम भी उल्लेख्य है। रामदेव राणा खेताके समयमें मेवाड़का मुख्यमंत्री था। करोड़ाके जैन मन्दिरके विज्ञप्ति लेखमें इनका सुन्दर वर्णण आया है। इसके पिताका नाम लाघु और दादाका नाम लक्ष्मीधर था। इसकी दो पत्नियाँ थीं—मेलादे और माल्हणदे। मेलादे से सहनपालका जन्म हुआ और माल्हणदे से सारंग का। सहनपाल नवलखा भी राणा मोकल और कुम्भाके समयमें मुख्यमन्त्री था। इसे अभिलेखोंमें "राजमन्त्री धुरधौरेयः" लिखा है। आवश्यक बृहद्वृत्तिमें भी आठ पुत्रोंका उल्लेख आया है। यथा—रणमल, रणधीर, रणवीर, माड़ा, संडा, रणभ्रम, चौड़ा और कर्मसिंह। इसकी माँ मेलादे वि० सं० १४८६ तक जीवित थी। उसने ज्ञानहंसगणिसे "सन्देह दोलावली" नामक पुस्तक लिखाई थी। प्रशस्तिमें इसकी बड़ी प्रशंसा की गयी है। रामदेवकी उक्त समय तक मृत्यु हो चुकी

थी। सारंग और उसके पुत्रोंका उल्लेख नागदाके अद्‌भुतजी मूर्ति लेखमें है। इसमें उसको "माल्हण कुक्षि सरोजहंसोपम जिनधर्म कर्पूरवात सद्यधिवुकसाः सारंग" लिखा है। इसकी दो पत्नियाँ थीं जिनके नाम हीमादे और लकमादे थे। रामदेव नवलखाने अनेक साधुओंको ज्ञान दिया था और तीर्थोंके जीर्णोद्धार तथा मन्दिर निर्माणके लिए सहस्रों रुपये व्यय किये थे।[४०]

वीसलश्रेष्ठिका नाम भी गणनीय है। यह इडरका रहनेवाला था और इसका विवाह रामदेव श्रेष्ठीकी पुत्री खीमादेसे हुआ था। यह सहणपालकी सगी बहन थी—"श्रीधर्मोत्कटमेदपाटव सचिव, श्रीरामदेवांगज मेलादेवि समुद्‌भूत खीमादेरीति" उल्लेखसे स्पष्ट है कि खीमादे की माँका नाम मीला देवी था। वंसलके पिताके नाम वंश था, जो इडरके राजा रणमल्हका मन्त्री था। इसके चार पुत्र थे—गोविन्द, बीसल, अंकुरसिंह और हीरा। 'सोम सौभाग्य काव्य' में लिखा है कि वीसल अत्यन्त धार्मिकपुरुष था। उसके दो पुत्र थे—धीर और चम्पक। इसने देलवाड़ामें आचार्य सोमसुन्दर सूरीसे विशालराजको वाचकपद दिलानेके हेतु बड़ा उत्सव किया था। इसने क्रियारत्न समुच्चयकी दश प्रतियाँ लिखवायीं। इसकी प्रशस्तिमें इसे 'स्त्रीविरत सुधर्म निरतो भक्त' लिखा है। चित्तौड़में इसने श्रेयांसनाथका एक भव्य मन्दिर भी बनवाया था, जिसकी प्रतिष्ठा आचार्य सोमसुन्दर सूरिने करायी थी। इसके पुत्र चम्पकने तिरानबे अंगुलकी एक मनोरथ कल्पद्रुम पार्श्वनाथकी प्रतिमा प्रतिष्ठित करायी थी। चम्पकने एक बड़ा उत्सव सम्पन्नकर जिनकीर्तिको सूरिपद दिलाया। बीसल श्रेष्ठि बड़ा धर्मात्मा और धर्म प्रचारक था।[४१]

जिन शासनकी प्रभावना करने वालोंमें गुणराज श्रेष्ठिका नाम भी प्रसिद्ध है। यह मेवाड़ के चित्तौड़का रहनेवाला था और अहमदाबादमें व्यापार करता था। इसका पूर्वज बीसल बड़ा प्रसिद्ध था, जो चित्तौड़में रहता था। इसका पौत्र धनपाल व्यापार करनेके हेतु अहमदाबाद गया था। उसका वंशज श्रेष्ठि गुणोराज हुआ। उसका छोटा भाई अम्बक था, जो जैन साधु हो गया था।

---

४० करेड़ा बिज्ञप्ति लेख, वि० सं० १४३१ तथा सन्देह दीलावली, वि० सं० १६८६ में रचित प्रशस्ति द्रष्टव्य है।

४१ पिटरसनकी छठी रिपोर्ट, पृ० १७-१८, पद्य १-२, देवकुल पाठक, पृ० ७-८, सोमसोभाग्य काव्यका सातवाँ सर्ग तथा गुरुगुणरत्नाकर काव्यका श्लोक ६५।

इस परिवारका सविस्तार वर्णन वि० सं० १४९५ के एक चित्तौड़ अभिलेखमें आया है। गुणराजके ५ पुत्र थे—गज, महिराज, बाल्हा कालु और ईश्वर। बाल्हाको राणा मोकल बहुत मानता था। कालू मेवाड़ राज्यमें उच्चपद पर नियुक्त था।

गुणराज जैन संघ का प्रभावक श्रेष्ठि था। इसने संघ निकाला था। जिसका उल्लेख "सोम सौभाग्य काव्य" के अष्टम सर्गमें आया है। कहा जाता है कि इस संघमें रणकपुर मंदिर का निर्माता धरणाशाह भी शामिल था। इसने गुजरात के बादशाह अहमदशाहसे फरमान प्राप्तकर संघ यात्रा की थी। इसके पुत्र बाल्हाने मोकलसे आज्ञा लेकर चित्तौड़में महावीर जैन मन्दिर बनवाया, जिसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १४९५ में राणा कुम्भाके समय सोमसुन्दर आचार्य ने की थी। गुणराज श्रेष्ठि और उसका परिवार मन्दिर बनवाने, प्रतिष्ठा करवाने एवं जीर्ण तीर्थोद्धार करानेके कार्यमें विशेष प्रसिद्ध हैं। यात्रा संघ निकालकर इस परिवारने जैन धर्मकी अपूर्व सेवा की है।

इस प्रकार ई० पूर्व तीसरी शतीसे ई० सन्‌की १६ वीं शताब्दी तक जैन धर्मकी उन्नति करनेमें राजपरिवार, सामन्त परिवार, मन्त्री परिवार एवं श्रेष्ठिपरिवार संलग्न रहा है।

जैनधर्मकी प्रभाविका नारियाँ

महान् पुरुषोंके समान ही जैनधर्मकी उन्नति करने वाली अनेक उल्लेखनीय नारियाँ भी हुई हैं। प्राचीन शिलालेखों एवं वाङ्मयके उल्लेखोंसे अवगत होता है कि जैन श्राविकाओं का तत्कालीन समाज पर पर्याप्त प्रभाव था। धर्म सेविका नारियों ने अपनी उदारता एवं आत्मोत्सर्ग द्वारा जैनधर्मकी पर्याप्त सेवा की थी। श्रवण बेलगोलाके अभिलेखोंमें अनेक श्राविकाओं एवं आर्यिकाओंका उल्लेख है, जिन्होंने तन-मन-धनसे जैन धर्मके लिए प्रयत्न किया है।

ई० पूर्व छठी शताब्दीमें जैन धर्मका अभ्युत्थान करनेवाली इक्ष्वाकुवंशीय महाराज चेटककी राज्ञी भद्रा, चन्द्रवंशीय महाराज शतानीककी धर्मपत्नी मृगावती, सूर्यवंशी महाराज दशरथकी पत्नी सुप्रभा, उदयन महाराजकी पत्नी प्रभावती, महाराज प्रसेनजितकी पत्नी मल्लिका एवं महाराज दधिवाहनकी पत्नी अभया भी है। इन देवियोंने अपने त्याग एवं शौर्यके द्वारा जैनधर्मकी विजय पताका फहरायी थी। इन्होंने अपने द्रव्यसे अनेक जिनालयोंका निर्माण कराया था तथा उनकी समुचित व्यवस्थाके लिए राज्यकी ओरसे भी सहायताका

प्रबन्ध किया गया था। महारानी मल्लिका एवं अभयाके सम्बन्धमें कहा जाता है कि इन देवियोंके प्रभावसे ही प्रभावित होकर महाराज प्रसेनजित एवं दधिवाहन जैन धर्मके दृढ़ श्रद्धालु हुए थे। महाराज प्रसेनजितने श्रावस्तीके जैनोंको जो सम्मान प्रदान किया था, उनका भी प्रधान कारण महारानी की प्रेरणा ही थी।

महाराज यम उड्रदेशके राजा थे। इन्होंने सुधर्म स्वामीसे दीक्षा ली थी। इन्हींके साथ महारानी धनवतीने भी श्राविकाके व्रत ग्रहण किये थे। धनवतीने जैन धर्मके प्रसार के लिए कई उत्सव किये थे। यह परम श्रद्धालु और धर्म प्रचारिका नारी थी। इसके प्रभावसे केवल इसका कुटुम्ब ही जैन धर्मानुयायी नहीं हुआ था बल्कि उड्रदेशकी समस्त प्रजा जैन धर्मानुयायिनी बन गई थी। सम्राट एल खारवेलकी पत्नी भूसीसिंहयथा बड़ी धर्मात्मा हुई थी। इसने भुवनेश्वरके पास खण्डगिरि और उदयगिरि पर अनेक गुफाएँ बनवायीं और मुनियोंकी सेवा-शुश्रूषा की।

मथुरा अभिलेखोंसे ज्ञात होता है कि अमोहिनी[४२], लेण शोमिका[४३], शिवामित्रा[४४], धर्मघोषा[४५], कसुयकी धर्मपत्नी स्थिरा[४६], आर्या जया[४७], जितामित्रा[४८] एवं आर्या बसुला[४९] आदिने जैन धर्मके उत्थानके लिए मन्दिर निर्माण, मूर्ति प्रतिष्ठा, आयाग पट्ट निर्माण आदि कार्य सम्पन्न किये। यहाँ स्मरणीय है कि उस युगमें धर्माराधनाका सबसे बड़ा साधन मन्दिरों एवं मूर्तियोंका निर्माण, उनकी प्रतिष्ठा करना ही माना जाता था।

मथुराके एक संस्कृत अभिलेखमें ओखरिका और उज्जतिका द्वारा बर्धमान स्वामीकी प्रतिमा प्रतिष्ठित किये जाने एवं जिन मन्दिरके निर्माण किये जानेका उल्लेख आया है।[५०] ई० पूर्वकी तीसरी-चौथी शताब्दीसे लेकर ई० सन् की

---

४२ जैन शिलालेख संग्रह द्वितीय भाग, अभिलेख सं० ५।

४३ वही, शिलालेख सं० ८।

४४ वही, अभिलेख सं० ६।

४५ वही, अभिलेख सं० १२।

४६ वही, अभिलेख सं० २२।

४७ वही, अभिलेख सं० २४।

४८ वही, अभिलेख सं० ४१।

४९ वही, अभिलेख सं० ६३।

५० वही, अभिलेख सं० ८८।

छठी शताब्दीके इतिहासमें गंगवंशकी महिलाओंकी उल्लेखनीय सेवाका निर्देश प्राप्त होता है। राजाओंके साथ गंगवंशकी रानियोंने भी जैन धर्मकी उन्नतिके अनेक उपाय किये। ये रानियाँ मन्दिरोंकी व्यवस्था करतीं, नये मन्दिर और तालाब बनवातीं एवं धर्म कार्योंके लिए दान की व्यवस्था करती थीं। उस राज्यके मूल संस्थापक दडिग और उनकी भार्या कम्पिलाके धार्मिक कार्योंके सम्बन्ध में कहा गया है कि इस दम्पतिने अनेक जैन मन्दिर बनवाये थे तथा मन्दिरोंकी पूर्ण व्यवस्था की थी। श्रवण-बेलगोलाके शक संवत् ६२२ के अभिलेखोंमें आदेयरेनाडमें चित्तूरके मौनी गुरुकी शिष्या नागमती, पेरुमाल गुरुकी शिष्या धण्ण कुत्तारे विगुरवि, नमिलूर संघकी प्रभावती, मयूर संघकी अध्यापिका दनितावती, इसी संघकी सौन्दर्या आर्या नामकी आर्यिका एवं व्रतशीलादि सम्पन्न शशिमति गीतिके समाधि मरण धारण करनेका उल्लेख मिलता है। इन देवियोंने श्राविकाके व्रतोंका पालन किया था। अन्तिम जीवनमें संसारसे विरक्त होकर कटवप्रपर्वतपर समाधि ग्रहण कर ली थी। सौन्दर्या आर्यिकाके सम्बन्धमें अभिलेख २६ में बताया है कि उसने उत्साहके साथ आत्मसंयम सहित समाधि व्रतका पालन किया और सहज ही अनुपम सुरलोकका मार्ग ग्रहण किया।

इसके अनन्तर जैन धर्मके धार्मिक विकासके इतिहासमें पल्लवाधिराज मरुवर्माकी पुत्री और निर्गुन्द देशके राजा परमगुलकी रानी कन्दाक्षि का नाम आता है। इसने श्रीपुरमें लोकतिलक जिनालय बनवाया था। इस जिनालयकी सुव्यवस्थाके लिए श्रीपुर राजाने अपनी भार्याकी प्रेरणा एवं परमगूलकी प्रार्थनासे निर्गुन्द देशमें स्थित पुनल्ली नामक ग्राम दानमें दिया था। ऐतिहासिक जैन धर्मसेविका जैन महिलाओंमें इस देवीका प्रमुख स्थान है। इसके सम्बन्धमें बताया जाता है कि यह सदा पुण्य कार्योंमें आगे रहती थी। इसने कई उत्सव और जागरण भी किये थे। इसका समय ई० सन् की ८वीं शताब्दी है।

दसवीं शताब्दीमें राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीयके राज्य कालमें महासामन्त कलिविट्टरस वनवास प्रदेशके अधिकारी थे। सन् ६११ ई० में नगर खण्डके अधिकारी सत्तरस नागार्जुनका स्वर्गवास हो गया। उनके स्थानपर उनकी पत्नी अक्कियब्बेको अधिकारी नियुक्त किया गया। जक्कियब्बे शासनमें सुदक्ष और जैन शासनकी भक्त थी। नारी होनेपर भी उसमें बहादुरीकी कमी नहीं थी। सोलेतोरने इस नारीके सम्बन्धमें लिखा है—"The lady

who was skilled in ability for good government faithful to the Jinendra Sasana and rejoicing in her beauty."[५१]

इसी १०वीं शताब्दीमें जैन इतिहासमें स्मरणीय अतिमब्बे नामक महिला का जन्म हुआ है। इस देवीके पिताका नाम सेनापति मल्लप्य, पतिका नाम नागदेव और पुत्रका नाम पडेबल तेल था। सेनापति मल्लप्य पश्चिमी चालुक्य शासक तेलपका नायक था। अतिमब्बे एक आदर्श उपासिका थी। इसने अपने व्ययसे पोन्नकृत शान्ति पुराणकी एक हजार प्रतियाँ और डेढ़ हजार सोने एवं जवाहिरातकी मूर्तियाँ तैयार करायी थीं। अतिमब्बेका धर्म सेविकाओंमें अद्वितीय स्थान है।

१०वीं शताब्दीके अन्तिम भागमें वीरवर चामुण्डरायकी माता कालल देवी एक बड़ी धर्म प्रचारिका हुई है। भुजबल-चरितम्से ज्ञात होता है कि इस देवीने गोम्मट देवकी प्रशंसा सुनी तो प्रतिज्ञा की कि जबतक गोम्मट देवके दर्शन न करूँगी तबतक दूध नहीं पीऊँगी। जब चामुण्डरायको अपनी पत्नी अजिता देवीके मुखसे अपनी माताकी यह प्रतिज्ञा ज्ञात हुई तो मातृभक्त पुत्रने माताको गोम्मट देवके दर्शन करानेके लिए पोदनपुरकी ओर प्रस्थान किया। मार्गमें उसने श्रवणवेलगोलाकी चन्द्रगुप्त बसतिके पार्श्वनाथके दर्शन किये और भद्रबाहुके चरणोंकी वन्दना की। इसी रातको पद्मावती देवीने कालल देवीको स्वप्न दिया कि कुक्कुट सर्पोंके कारण पोदनपुरकी वन्दना सम्भव नहीं है, पर तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न होकर गोम्मट देव तुम्हें यहीं बड़ी पहाड़ी पर दर्शन देंगे। दर्शन देनेका प्रकार यह है कि तुम्हारा पुत्र शुद्ध होकर इस छोटी पहाड़ी परसे एक स्वर्ण बाण छोड़े तो पाषाण शिलाओंके भीतरसे गोम्मट देव प्रकट होंगे। प्रातःकाल होनेपर चामुण्डरायने माताके आदेशानुसार नित्य कर्मसे निवृत्त हो स्नान पूजन कर छोटी पहाड़ीकी एक शिलापर अवस्थित हो दक्षिण दिशाकी ओर मुँह कर एक बाण छोड़ा जो विन्ध्य गिरिके मस्तक परकी शिलामें लगा। बाणके लगते ही शिला खण्डके भीतरसे गोम्मट स्वामीका मस्तक दृष्टिगोचर हुआ। अनन्तर हीरेकी छेनी और मोतीकी हथौड़ीसे शिलाखण्ड को हटाकर गोम्मट देवकी प्रतिमा निकाल ली गयी। इसके पश्चात् माताकी आज्ञासे वीरवर चामुण्ड रायने दुग्धाभिषेक किया।

इस पौराणिक घटनामें कुछ तथ्य हो या न हो, पर इतना निर्विवाद सत्य

---

५१ मेडिवल जैनिज्म, पृ० १५६

है कि चामुण्डरायने अपनी माता कालल देवीकी आज्ञा और प्रेरणासे ही श्रवणबेलगोलामें गोम्मटेश्वरकी मूर्ति स्थापित करायी थी। इस देवीने जैन धर्म के प्रचारके लिए भी कई उत्सव किये थे।

राजकीय महिलाओंमें जैन धर्मके संरक्षणमें क्रियात्मक योग देनेवाली पोचब्बरसी राजेन्द्र कौंगालवकी माता थी। इसने सन् १०५० ई० में एक बसदिका निर्माण कराकर उसकी व्यवस्थाके लिए भूमि प्रदान की। कदम्ब शासक कीर्तिदेवकी बड़ी रानी मालल देवीने सन् १०७७ ई० में कुप्पटूरमें पद्मनन्दि सिद्धान्तदेव द्वारा पार्श्वनाथ चैत्यालयका निर्माण कराया था।

शान्तरवंशकी महिला चटटरदेवीका नाम अत्यन्त गौरवके साथ लिया जाता है। यह रक्कस गंगकी पौत्री और पल्लव नरेश काडुवेट्टीकी पत्नी थी। पुत्र और पतिकी मृत्यु होनेपर अपनी छोटी बहनकी चार सन्तानोंको अपना समझा और उनके साथ शान्तरोंकी राजधानी पोंबुच्चपुरमें जिनालयोंका निर्माण कराया। उसने अनेक मन्दिर, बसदियाँ, तालाब, स्नानगृह तथा गुफाएँ बनवायीं तथा आहार, औषध, शिक्षा एवं आवास की व्यवस्था की। चट्टल देवीके गुरु श्रीविजय भट्टारक थे। ये रक्कस गंग और नन्द शान्तरसके भी गुरु थे।

सन् १११२ ई० में गंगवादीके राजा भुजबल गंगकी महादेवी जैन मतकी संरक्षिका थी। लेखमें उसे जिनेन्द्र चरणोंकी भ्रमरी कहा है। उसके पति राजा हेम्मकी दूसरी पत्नीका नाम वाचल देवी था। उसने बन्निकेरेमें एक सुन्दर जिनालयका निर्माण कराया था। इस जिनालयके लिए उसके पतिने, गंग महादेवीने तथा प्रमुख अधिकारियोंने मिलकर बुदनगेरे गाँव, कुछ अन्य भूमि एवं धन प्रदान किया था।

शान्तर राजकुमारी चम्पादेवीका नाम भी प्रसिद्ध है। यह राजा तैलकी पुत्री तथा विक्रमादित्य शान्तरकी बड़ी बहन थी। एक अभिलेखके अनुसार इसकी अष्ट प्रकारी पूजा, जिनाभिषेक एवं चतुर्विध भक्तिमें अत्यन्त आस्था थी। इसकी पुत्री वाचाल देवी दूसरी अतिमब्बे थी। वह प्रतिदिन सूर्य निकलते ही जिन भगवानकी पूजा किया करती थी। दोनों माँ बेटी वादि-सिंह अजितसेन पण्डित देवकी शिष्याएँ थी।

जैन सेनापति गंगराजकी पत्नी लक्ष्मीमतीका नाम भी उल्लेखनीय है। यह शुभचन्द्रकी शिष्या थी। इसने श्रवणबेलगोलामें एक जिनालयका निर्माण कराया था और उसके पतिने इसके लिये दान दिया था। वस्तुतः लक्ष्मीमती

अपने युगकी अत्यन्त प्रभावशालिनी नारी थी। गंगराजके बड़े भाईकी पत्नी अक्कणब्बे जैन धर्मकी संरक्षिकाओंमें गणनीय है। वह सेनापति बोप्पकी माता थी। श्रवणवेलगोला के ४३वें अभिलेखमें अक्कणब्बेको जैन धर्मका बड़ा भारी श्रद्धालु बताया है। इसने जिन मूर्ति एवं तालाबका निर्माण कराया था। मन्दिरों और मूर्तियोंको प्रतिष्ठा करानेमें अककणबे एवं सेनापति सूर्यदण्ड-नायककी पत्नी दावणगेरे भी प्रसिद्ध हैं। इन दोनों नारियोंने जैन शासनकी प्रभावनाके हेतु अनेक कार्य किये हैं।

गंगवंशके राजा मारसिंहकी छोटी बहनके गुरु माघनन्दि थे। इस महिला ने जहाँ जैन मन्दिर नहीं थे वहाँ जैन मन्दिरोंका निर्माण कराया और जहाँ जैन मुनियोंको निवासका प्रबन्ध नहीं था वहाँ निवास स्थान बनवाये।

होयसल नरेश विष्णुवर्धनकी रानी शान्तल देवी प्रभावनाके लिये प्रसिद्ध है। इसके गुरु प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेव थे। शान्तल देवीने जैनधर्मके लिए जो कुछ कार्य किये वे सब चिरस्थायी हैं। उसने श्रवणबेलगोलामें सन् ११२३ ई० में जिनेन्द्रकी मूर्तिकी स्थापना की और सवति गंधवारण बसदिका निर्माण कराया तथा राजा विष्णुवर्धनकी आज्ञासे प्रबन्धादिके लिये मोटटेनबिले गाँव प्रदान किया। श्रवणबेलगोलाके एक अभिलेखमें शान्तल देवीके दानका स्मारक वर्णित है। कहा जाता है कि विष्णवर्धनकी पटरानी शान्तल देवीने जो पातिव्रत धर्म परायणता और भक्तिमें रुक्मिणी, सत्यभामा और सीताके समान थी, सवति गंधवारण बसदि का निर्माण कराकर अभिषेकके लिये एक तालाब बनवाया और उसके साथ एक ग्राम दान दिया। सन् ११३१ ई० में इसने सल्लेखनापूर्वक मरण किया।[५२]

राजा विष्णवर्धनकी पुत्री हरियब्बरसि जैन धर्मकी भक्त थी। सन् ११२६ ई० में हन्नियूरमें एक उत्तुंग जिनालयका निर्माण कराया और उसकी मरम्मत आदिके लिये भूमि प्रदान की।

श्रवणवेलगोलाके १२४वें अभिलेखसे ज्ञात होता है कि चन्द्रमौलि मन्त्रीकी पत्नी आचल देवीने श्रवणवेलगोलामें एक जिन मन्दिरका निर्माण कराया था, उसे चन्द्रमौलिकी प्रार्थनासे होयसल नरेश वीर बम्मेयन हल्लि नामक ग्राम प्रदान किया था।

जैन महिलाओंके इतिहासमें नागले भी उल्लेख योग्य विदुषी और धर्म

---

[५२] जैन शिलालेख संग्रह प्रथम भाग, अभिलेख सं० ५३ और ५६।

सेविका महिला है। इसके पुत्रका नाम बूचराज या बूचड़ मिलता है। यह अपनी माताके स्नेहमय उपदेशके कारण शक संवत् १०३७ में वैशाख शुक्ला दशमी रविवारको सर्वपरिग्रहका त्यागकर स्वर्गवासी हुआ। इसकी धर्मात्मा पुत्री देमती या देवमती थी। यह आहार, औषधि, ज्ञान और अभय इन चारों प्रकारोंके दानोंको करती थी। इसने शक संवत् १०४२, फाल्गुन कृष्ण एकादशी गुरुवारको संन्यास विधिसे शरीर त्याग किया था।

दक्षिण भारतके अतिरिक्त उत्तर भारतमें भी कई जैन महिलाओंने जैन धर्मकी प्रभावना की है। सुप्रसिद्ध कवि आशाधरजीकी पत्नी पद्मावतीने बुलडाना जिलेके मेहंकर (मेघंकर) नामक ग्रामके बालाजी मन्दिरमें जैन मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करायी थी। यह एक खण्डित मूर्तिके लेखसे सिद्ध होता है। राजपूतानेकी जैन महिलाओंमें पोरवाड़वंशी तेजपालकी भार्या सोहडा देवी, शीशोदिया वंशकी रानी जयतल्लदेवी एवं जैन राज आशाशाहकी माताका नाम विशेष उल्लेख योग्य है।

चौहान वंशकी रानियोंने भी उस वंशके राजाओंके समान ही जैन धर्मकी सेवा की है। इस वंशका शासन वि० सं० की तेरहवीं शताब्दीमें था। राजा कीर्तिपालकी पत्नी महिवल देवीका नाम प्रसिद्ध है। इस देवीने शान्तिनाथ भगवानका उत्सव मनानेके लिए भूमिदान की थी। इसने धर्म प्रभावनाके लिए कई उत्सव भी किए थे।

इसी वंशमें होने वाले पृथ्वीराज द्वितीय और सोमेश्वरने अपनी महारानियोंकी प्रेरणासे बिजौलियाके मन्दिरको दानमें दिया था तथा मन्दिरके स्थायी प्रबन्धके लिए राज्यकी ओरसे वार्षिक चन्दा भी दिया जाता था।

परमार वंशमें उल्लेख योग्य धारावंशकी पत्नी श्रृङ्गारदेवी हुई है। इस देवीने झालोनीके शान्तिनाथ मन्दिरके लिए पर्याप्त दान दिया था तथा धर्म प्रसारके लिये और भी अनेक कार्य किये थे। इस प्रकार जैन धर्मके विकासमें पुरुषोंके समान जैन नारियोंने भी योगदान दिया है।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

नरकके रक्षकोंने त्रासित होकर दोनों हाथ ऊँचे किए रोते-रोते यमराजको जाकर समस्त कथा निवेदन की। उनकी बात सुनकर यम साक्षात् यम की तरह प्रतिभासित होने लगा और मानो युद्धरूपी नाटक का सूत्रधार हो इस प्रकार अपनी सेना लेकर क्रोध से आँखें लाल किए युद्ध करने नगर से निकला। सैनिक सैनिक के साथ, सेनापति सेनापति के साथ, क्रुद्ध यम क्रुद्ध रावण के साथ युद्ध करने लगा। बहुत देर तक यम और रावण के मध्य वाणयुद्ध चलता रहा। तदुपरान्त उन्मत्त हाथी जैसे सूँड़ रूपी दण्ड उठाकर दौड़ता है वैसे ही स्वदण्ड लिए यम रावण की ओर दौड़ा। शत्रुओं को नपुंसक रूप गिनने वाले रावण ने क्षुरप्र वाण से कमल नाल की तरह यमदण्ड के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तब यम ने बाण वर्षा कर रावण को आच्छादित कर दिया। रावण ने भी उन बाणों को इस प्रकार नष्ट कर डाला जैसे लोभ समस्त गुणों को नष्ट कर देता है। तदुपरान्त एक साथ बाण-वर्षा कर रावण ने जैसे जरा (बुढ़ापा) मनुष्य को जर्जरित कर देती है उसी प्रकार यम को जर्जर कर डाला। तब यम युद्ध-क्षेत्र से भागकर रथनुपुर गया और वहाँ विद्याधर राज इन्द्र की शरण ली और उसे नमस्कार कर करबद्ध होकर बोला, 'हे प्रभो, अब मैं यमत्व को जलांजलि दे आया हूँ। आप तुष्ट हों या रुष्ट अब मैं यमत्व नहीं करूँगा। कारण अब तो यम का भी यमरूप रावण उत्पन्न हो गया है। उसने नरक के रक्षकों को मारकर दूर भगा दिया और समस्त नारकियों को मुक्त कर दिया है। क्षात्र व्रत के लिए ही उसने मुझे जीवित छोड़ दिया है। उसने वैश्रवण को पराजित कर लंका व पुष्पक विमान अपने अधिकार में कर लिया है। सुरसुन्दर-से वीर को भी उसने पराजित कर दिया है।'

यम की यह बात सुनकर विद्याधर राज इन्द्र युद्ध के लिए तुरन्त प्रस्तुत हुए किन्तु कुल-मन्त्रियों ने समझा-बुझाकर उसे वीर रावण के साथ युद्ध करने से रोक दिया। इन्द्र तब यम को सुरसंगीत नामक नगर का राज्य देकर भोग सुख में पूर्ववत् निमज्जित होकर रथनुपुर में रहने लगे।

इधर बलवान रावण आदित्यरजा को किष्किंध्या का और ऋृक्षराज को

ऋक्षपुर का राज्य देकर स्वयं लंका को लौट गया। लोग जैसे देवों की स्तुति करते हैं वैसे ही नगरजन और आत्मीय-स्वजन रावण की स्तुति करने लगे। इन्द्र जैसे अमरावती पर राज्य करता है वैसे ही रावण भी लंका का राज्य करने लगा।

कपिराज आदित्यरजा की पत्नी इन्दुमालिनी के गर्भ से एक महा बलवान पुत्र ने जन्म ग्रहण किया। उसका नाम बाली रखा गया। उग्र भुजबलधारी बाली समुद्र पर्यन्त जम्बूद्वीप की प्रदक्षिणा देता और समस्त अर्हत् चैत्यों की वन्दना करता। आदित्यरजा के और दो सन्तानें हुयीं। एक पुत्र सुग्रीव एवं एक पुत्री सुप्रभा। सुप्रभा सबसे छोटी थी।

ऋक्षराज की पत्नी हरिकान्ता के गर्भ से जगत् प्रसिद्ध दो पुत्र हुए नल और नील।

आदित्यरजा ने अपने बलवान पुत्र बाली को राज्य देकर स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली और तपस्या कर मोक्ष प्राप्त किया। बाली ने अपने समान सम्यक्-दृष्टि-सम्पन्न, न्याय-परायण, दयालु और महापराक्रमी अनुज सुग्रीव को युवराज पद पर अभिषिक्त किया।

एक बार रावण अन्तःपुरिकाओं को लेकर हाथी पर चढ़कर मेरु पर्वत के अर्हत् चैत्यों की वन्दना करने गया। उसी समय मेघप्रभ नामक खेचर का पुत्र खर लंका में आया। उसने वहाँ चन्द्रनखा को देखा और उस पर अनुरक्त हो गया। चन्द्रनखा भी उसकी अनुरागिनी हुयी। तब खर चन्द्रप्रभा को हरण कर पाताल लंका में चला गया और आदित्यरजा के पुत्र चन्द्रोदय को परास्त कर उसका राज्य छीन लिया। मेरु पर्वत से लौटकर रावण ने जब चन्द्रनखा के अपहरण की बात सुनी तो अत्यन्त क्रोधित हो उठा। हाथी के शिकार के समय केशरी सिंह जैसे भयानक रूप धारण करता है उसी प्रकार विकटमूर्ति रावण खर के विनाश हेतु युद्ध के लिए उद्यत् हुआ। तब मन्दोदरी ने रावण से कहा, 'हे मानद, अकारण आप युद्धोन्मत्त क्यों हो गए हैं? शान्त चित्त से एक बार सोचिए। कन्या तो किसी न किसी को देनी ही होती है। फिर यदि कन्या ने स्वेच्छा से कुलीन वर चुन लिया है तो इसमें बुरा क्या है? दूषण का अग्रज खर चन्द्रनखा के उपयुक्त वर है। वह आपका पराक्रमी और निर्दोष सेवक होगा। अतः उस पर प्रसन्न हों और प्रधान पुरुष को भेजकर चन्द्रनखा के साथ उसका विवाह करवा दें। पाताल लंका का राज्य भी उसको दे दें।

रावण के अनुज कुम्भकर्ण और विभीषण ने भी रावण को यही परामर्श दिया। तब रावण ने शान्त होकर उनकी बात मान ली एवं मय व मरीचि को भेजकर उसका विवाह करवाया और पाताल लंका का राज्य भी छोड़ दिया। खर रावण की आज्ञा का पालन करते हुए चन्द्रनखा के साथ आनन्द-पूर्वक दिन व्यतीत करने लगा।

राज्यभ्रष्ट चन्द्रोदय कालवश मृत्यु को प्राप्त हुआ। उस समय उसकी पत्नी अनुराधा गर्भिणी थी। वह जंगल में भाग गयी। और वहाँ सिंही जैसे सिंह को जन्म देती है उसी प्रकार एक (पुरुष सिंह) पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम रखा गया विराध। वह जैसा नीतिवान था वैसा ही बलवान भी था। युवावस्था प्राप्त होते न होते उसने समस्त कलाओं के सागर को अतिक्रम कर लिया अर्थात् समस्त कलाओं में पारंगत हो गया।

एक दिन रावण राजसभा में बैठा था। बातचीत के प्रसंग वश कोई कह उठा—'कपिश्वर बाली बहुत प्रतापी एवं बलवान पुरुष हैं।' सूर्य जैसे अन्य का प्रकाश नहीं सह सकता उसी प्रकार रावण भी अन्य का प्रताप सहन नहीं कर सकता था। अत उसने बाली के पास दूत भेजा। दूत वहाँ जाकर बाली को नमस्कार कर बोला—

'मैं रावण का दूत हूँ। उन्होंने आपको कहलवाया है 'तुम्हारे पूर्वज श्रीकण्ठ ने शत्रुओं के हाथ से बचने के लिए हमारे पूर्वज कीर्तिधवल की शरण ग्रहण की थी। उन्होंने अपनी पत्नी का भाई समझ कर उसकी रक्षा की थी। तदुपरान्त उनमें स्नेह हो गया और श्रीकण्ठ का विच्छेद असह्य होगा समझ कर अपना बानर द्वीप उन्हें देकर यहाँ आकर रहने को कहा। तभी से हमलोगों का स्वामी और सेवक का सम्बन्ध है। उसके बाद हमारे तुम्हारे वंश में कितने ही राजा हो गए हैं। वे सभी इस सम्बन्ध का निर्वाह करते आ रहे हैं। श्रीकण्ठ से सातवीं पीढ़ी में तुम्हारे पितामह किष्किन्धी हुए। उस समय मेरे प्रपितामह सुकेश लंका में राज्य कर रहे थे। उनसे भी स्वामी सेवक का सम्बन्ध था। तदुपरान्त आठवीं पीढ़ी में तुम्हारे पिता आदित्यरजा राजा हुए। वे यम के कारागार में बन्दी थे। मैंने ही उन्हें वहाँ से मुक्त कर पुनः किष्किन्ध्या का राज्य दिया था यह सभी जानते हैं। अभी तुम उनके सिंहासन पर बैठे हो। अतः तुम्हारे लिए भी उचित है तुम वंश परम्परागत भावसे हमारी सेवा करो।'

दूत के मुँह से यह सुनकर गर्व रूपी अग्नि के लिए शमी वृक्ष तुल्य महा मनस्वी बालीने अविकृत आकृति रखे हुए गम्भीर स्वर में कहा—

'हम दोनों के वंश में अखण्ड प्रीति का सम्बन्ध चला आ रहा है यह मैं जानता हूँ। राक्षस और बानर वंश में वह आज तक तो अक्षुण्ण था। हमारे पूर्वज सुख-दुःख में एक दूसरे की रक्षा करते थे। इसके मूल में केवल स्नेह था, स्वामी-सेवक भाव नहीं था। दूत, सर्वज्ञ देव, साधु और सुगुरु इनके अतिरिक्त मैं और किसी को पूजनीय नहीं समझता। मेरे लिए तो केवल वे ही पूज्य हैं। आपके स्वामी के मन में ऐसा भाव क्यों उत्पन्न हुआ? वे स्वयं को स्वामी और हमें सेवक कहकर आज तक चले आ रहे कुल क्रमागत स्नेह सम्बन्ध का खण्डन कर रहे हैं। फिर भी मैं मित्र कुल में उत्पन्न होकर और अपनी शक्ति को जानते हुए भी तुम्हारे स्वामी को क्षति नहीं पहुँचाऊँगा। कारण मै लोक निन्दा से डरता हूँ। किन्तु यदि वे मेरी कोई क्षति करने की चेष्टा करेंगे तो उसका प्रतिकार मैं अवश्य करूँगा। दूत अब तुम जाओ। उनको उनकी शक्ति के अनुसार जो करना है करने को कहो।'

दूत ने लौटकर रावण से सारी बात कही। दूत की बात सुनकर रावण की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी। उसने तत्काल वृहद् सेना लेकर किष्किन्ध्या पर आक्रमण कर दिया। भुजबल शोभित बाली भी अपनी सेना लेकर रावण के सन्मुख आया। पराक्रमी वीर के लिए युद्ध का अतिथि सर्वदा ही प्रिय रहा है। उभय पक्ष में युद्ध आरम्भ हो गया। पाषाण के प्रतिरोध में पाषाण, वृक्ष के प्रतिरोध में वृक्ष, गदा के प्रतिरोध में गदा प्रयुक्त होने लगी। रथ गिरकर पापड़ की तरह चूर-चूर होने लगे। बड़े-बड़े हाथी मिट्टी के पिण्ड की तरह बिखरने लगे। घोड़े कद्दु की तरह स्थान-स्थान पर कटकर गिरने लगे। और पैदल सेना चंचा घास के पुलिन्दों की तरह कटने लगी। इस प्रकार जीव हत्या होते देखकर बाली का मन दयार्द्र हो उठा। वह रावण के पास जाकर बोला—

'विवेकी पुरुषों के लिए सामान्य जीव हत्या करना भी जब अनुचित है, तब हस्ती आदि पंचेन्द्रिय जीवों की हत्या का तो कहना ही क्या है? यद्यपि शत्रु को समस्त प्रकार से जय करना उपयुक्त है फिर भी पराक्रमी पुरुष स्व भुजबल से ही शत्रु को जीतने की इच्छा रखते हैं। हे रावण, तुम पराक्रमी भी हो, श्रावक भी हो। अतः सैन्य युद्ध बन्द कर दो। इस प्रकार के युद्ध में अनेक निर्दोष जीवों की हत्या होती है जो चिर नरक वास का कारण है।'

बाली की इस युक्ति को सुनकर धर्म का ज्ञाता सब प्रकार की युद्ध विद्याओं में विशारद रावण अकेला ही बाली के साथ युद्ध करने को तत्पर हो गया। रावण बाली पर जो भी अस्त्र निक्षेप करता बाली उसको अपने शस्त्र

से सूर्य किरण जैसे अग्नि को हतप्रभ कर देती है उसी प्रकार निरर्थक कर देता। रावण ने सर्प वरुण आदि मन्त्रास्त्र चलाए, बाली ने गरुड़ादि अस्त्र चलाकर उन्हें नष्ट कर दिया। जब समस्त मन्त्रास्त्र निष्फल हो गए तब क्रुद्ध रावण ने दीर्घकाय भुजंग-सा चन्द्रहास खड्ग निष्कासित कर बाली की हत्या करनी चाही। उस समय रावण को देखकर लग रहा था मानों एक दंत विशिष्ट हाथी या एक शृंग युक्त पर्वत दौड़ा आ रहा है। जैसे कोई हाथी क्रीड़ा ही क्रीड़ा में शाखा सहित वृक्ष को उखाड़ फेंकता है उसी प्रकार बाली ने खड्ग सहित रावण को बाएँ हाथ से उठाकर बगल में दबा लिया और बिना व्यग्र हुए क्षण भर में चारों समुद्र की परिक्रमा देकर लौट आया। लज्जा के मारे रावण का सिर झुक गया। तब रावण को छोड़कर वह बोला—'रावण, वीतराग सर्वज्ञ, आप्त और त्रैलोक्य पूजित अर्हत् के अतिरिक्त मेरे लिए और कोई पूज्य नहीं है। तुम्हारे शरीर से उत्पन्न गर्व रूपी उस शत्रु को धिक्कार है जिसके कारण तुम मुझे सेवक बनाने की इच्छा से इस स्थिति को प्राप्त हुए हो। किन्तु मैं हमारे गुरुजनों के प्रति किए गए उपकार को स्मरण कर तुम्हें छोड़ देता हूँ। और इस पृथ्वी का राज्य भी तुम्हें देता हूँ जिस पर तुम्हारी अखण्ड आज्ञा कार्यकर हो। यदि मैं विजय की इच्छा करूँ तो तुम इस पृथ्वी को कैसे प्राप्त करोगे? जहाँ सिंह रहता है वहाँ हाथी कैसे रह सकता है? किन्तु अब मेरी कोई इच्छा नहीं है। मैं मोक्ष साम्राज्य की कारणभूत दीक्षा ग्रहण करूँगा। किष्किन्ध्या का राज्य मैं सुग्रीव को दूँगा। वह तुम्हारी आज्ञा का पालन करता हुआ यहाँ राज्य करेगा।'

ऐसा कहकर सुग्रीव को राज्य देकर बाली ने गगनचन्द्र मुनि से दीक्षा ग्रहण कर ली। विविध प्रकार के अभिग्रहों का पालन कर तपस्या में निरत होकर प्रतिमाधारी मुनि बाली ममता रहित भाव से शुभ ध्यान पूर्वक इस पृथ्वी पर विचरण करने लगे। जिस प्रकार वृक्ष पत्र पुष्प फल आदि सम्पत्ति को प्राप्त करता है उसी प्रकार बाली मुनि ने अनेक लब्धियों को प्राप्त किया। एक बार बिहार करते हुए वे अष्टापद पर्वत पर आए और दोनों बाहुएँ फैला कर कायोत्सर्ग ध्यान में निमग्न हो गए। उन्होंने ध्यान की जो प्रतिमा धारण कर रखी थी उसे देखकर लगता था मानो वृक्ष पर झूला डाला हुआ है। इसी प्रकार एक मास पर्यन्त वे ध्यान में रहे। तत्पश्चात् दूसरे दिन पारना किया और पुनः एक मास का व्रत ले लिया। इसी प्रकार उनका मासक्षमण का व्रत चलता रहा।

उधर सुग्रीव ने अपनी बहिन श्रीप्रभा का रावण के साथ विवाह कर

दिया। इस विवाह ने पूर्व स्नेह रूपी सूखते वृक्ष को पुनः सजीव बनाने में जलधारा का काम किया। तदुपरान्त चन्द्र से उज्ज्वल कीर्ति सम्पन्न सुग्रीव ने बालीपुत्र पराक्रमी चन्द्ररश्मि को युवराज पद पर अभिषिक्त कर दिया। सुग्रीव को अपना आज्ञाकारी बना कर एवं श्रीप्रभा को साथ लेकर रावण लंका लौट आया। और भी अनेक विद्याधर कन्याओं के साथ रावण ने बल पूर्वक विवाह कर लिया।

एक बार रावण नित्यालोक नगरी के राजा नित्यालोक की कन्या रत्नावली से विवाह करने जा रहा था। राह में अष्टापद पर्वत पड़ा। जिस प्रकार दुर्ग प्राचीर के समीप आने पर शत्रु सैन्य की गति अवरूद्ध हो जाती है। उसी प्रकार अष्टापद पर्वत के ऊपर से जाते समय रावण के पुष्पक विमान की गति अवरूद्ध हो गयी। सागर में लंगर डालने पर जिस प्रकार जहाज की गति रूद्ध हो जाती है, आलान स्तम्भ से बंधे हाथी की गति रूद्ध हो जाती है, उसी भाँति अपने विमान की गति रूद्ध होते देखकर रावण क्रुद्ध हो उठा।

'कौन मेरे विमान की गति रूद्ध कर मृत्यु का आह्वान कर रहा हैं, कहकर वह जैसे ही विमान से उतरा तो पर्वत शिखर पर उसने नवीन उद्गत शृंग-से कायोत्सर्ग स्थित बाली को देखा। अपने विमान के नीचे बाली को देखकर रावण बोल उठा—'मुनिवर बाली, क्या अभी भी तुम्हारा क्रोध मेरे ऊपर से नहीं हटा। क्या तुमने जगत को ठगने के लिए यह व्रत धारण कर रखा है? उस समय किसी माया बल से तुमने मुझे उठा लिया था। मैं उसका बदला लूँगा सोच कर तुमने मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली किन्तु मैं तो अभी भी वही रावण हूँ। और मेरी भुजाएँ भी वही हैं। आज समय आ गया है तुमने जो कुछ किया था उसका बदला लेने का। तुम मुझे चन्द्रहास खड्ग सहित उठाकर चार समुद्रों तक घूम आए थे, मैं आज तुम्हें इसी अष्टापद पर्वत सहित उठाकर लवण समुद्र में फेंक दूँगा।'

ऐसा कहकर आकाश से गिरी बिजली जिस प्रकार धरती को विदीर्ण कर देती है उसी भाँति पृथ्वी को विदीर्ण करता रावण अष्टापद पर्वत के तल में प्रविष्ट हुआ। तदुपरान्त भुजबल उद्धत उसने एक हजार विद्याओं को स्मरण कर उस दुर्द्धर पर्वत को उठाया। उसी समय तड़-तड़ करते व्यंतर देव त्रासित होकर जमीन पर गिरने लगे। झल-झल शब्दों से चंचल हुआ समुद्र जल पृथ्वी को आच्छादित करने लगा। खड-खड शब्द के साथ गिरती हुयी शिलाओं

से हस्तीदल क्षुब्ध हो गया एवं कड़कड़ करते गिरि नितम्ब के उपतन में वृक्ष समूह टूट-टूट कर गिरने लगे। इन सभी दृश्यों को अनेक लब्धि रूपी नदी को धारण करने वाले समुद्र रूप शुद्धबुद्धि महामुनि बाली ने देखा। वे सोचने लगे, हाय, यह दुर्मति रावण आज तक मेरे प्रति द्वेष परायण रहा है एवं इसी द्वेष के कारण असमय में ही अनेकों की हत्या करने में प्रवृत्त हुआ है। इतना ही नहीं भरतेश्वर द्वारा निर्मित इस चैत्य को भी नष्ट कर भरतक्षेत्र के अलंकार रूप इस तीर्थ को उच्छेद करने का प्रयत्न कर रहा है। यद्यपि मैं इस समय निःसंग हूँ, अपने शरीर से भी ममताहीन हूँ, राग और द्वेष रहित हूँ, समता जल में निमग्न हूँ फिर भी प्राणी और चैत्य की रक्षा के लिए राग और द्वेष न रखकर उसे सामान्य प्रतिबोध देना आवश्यक है।

ऐसा विचार कर अर्हत् बाली ने पाँव के अंगुष्ठ से अष्टापद पर्वत को थोड़ा दबाया। उसी दबाव से मध्याह्न काल में देह की छाया जिस प्रकार संकुचित हो जाती है या जल से बाहर करने में कच्छप का माथा जिस प्रकार संकुचित हो जाता हैं उसी प्रकार रावण का शरीर संकुचित हो गया। उसके हाथ टूटने लगे, मुँह से खून निकलने लगा, पृथ्वी को रुलाकर रावण उच्चस्वर में रोने लगा। उसी दिन से इसीलिए उसका एक और नाम हुआ रावण। उसका हृदय को द्रवित कर देने वाला क्रन्दन सुनकर दयालु बाली ने उसे छोड़ दिया। कारण यह कार्य उन्होंने केवल रावण को शिक्षा देने के लिए ही किया था क्रोध के वशीभूत होकर नहीं।

प्रतापहीन रावण पर्वत तल से निकल कर पश्चाताप करता हुआ बाली के पास गया और करबद्ध होकर बोला—

'निर्लज्ज मैं बार-बार अपराध कर आपको सता रहा हूँ, किन्तु महामना और दयालु आप शक्तिशाली होते हुए भी सब कुछ सहन करते रहे हैं। आपने कृपा के वशीभूत होकर मेरे लिए पृथ्वी का परित्याग किया इसलिए नहीं की आप दुर्बल थे। किन्तु मैं तब भी नहीं समझा। अज्ञान वश हाथी जिस प्रकार पर्वत को उखाड़ना चाहता है मैं भी उसी प्रकार आपको उखाड़ना चाहता था। अब मैंने मेरी और आपकी शक्ति का परिमाप कर लिया है। कहाँ पर्वत कहाँ वल्मिक, कहाँ गरूड़ कहाँ गिद्ध ? मैं तो मरने ही वाला था आपने ही मुझे जीवनदान दिया है। मुझ अपराधी पर भी आपने जो उपकार किए हैं उसके लिए आपको बार-बार नमस्कार।'

इस प्रकार दृढ़ भक्ति के साथ बाली मुनि से प्रार्थना कर, क्षमा मांग तीन

प्रदक्षिणा दे रावण ने नमस्कार किया। बाली मुनि की इस उदारता पर देवों ने आकाश से 'साधु-साधु' कहकर उनपर पुष्प वृष्टि की।

दूसरी बार फिर बाली मुनि को नमस्कार कर रावण पर्वतों के मुकुट रूप महाराज भरत द्वारा निर्मित चैत्य के पास गया। चन्द्रहास खड्ग और अस्त्र-शस्त्रादि चैत्य के बाहर रखकर रावण ने चैत्य में प्रवेश किया और ऋषभादि तीर्थंकरों की अष्टप्रकारी पूजा की। तदुपरान्त महा साहसी रावण भक्ति वश अपनी शिरा और उपशिराओं को बाहर निकालकर बाहू रूपी वीणा पर उन्हें तन्त्री कर बजाने लगा। रावण जब ग्राम राग में रम्य वीणा बजा रहा था तब उसकी पत्नियाँ सप्तम स्वर से मनोहर गीत गाने लगी। उसी समय पन्नगपति धरणेन्द्र चैत्य वन्दना के लिए वहाँ आए। उन्होंने प्रभु की पूजाकर वन्दना की। तदुपरान्त रावण को ध्रुपदादि पद में मनोहर वीणा के साथ अर्हत् का गुणगान करते देखकर वे रावण से बोले, 'रावण' तुम अर्हतों का अतीव सुन्दर गुणगान कर रहे हो। यह तुम अपने आन्तरिक भक्ति वश कर रहे हो। इससे मैं संतुष्ट हुआ हूँ। यद्यपि अर्हत् भक्ति का मुख्य फल है भक्ति फिर भी तुम्हारी सांसारिक वासना अभी जीर्ण नहीं हुयी है। अतः अपनी इच्छानुसार कुछ मांगो—जो मांगोगे मैं दूँगा।'

रावण बोला, 'हे नागेन्द्र, देवाधिदेव अर्हत् के गुणानुवाद गुण से जो आप प्रसन्न हुए हैं यह आपके हृदय में रही अर्हत् भक्ति का चिह्न है। किन्तु मुझे तो किसी भी वरदान की आवश्यकता नहीं है। कारण वरदान से जिस प्रकार आपकी स्वामीभक्ति उत्कृष्ट होती है उसी भाँति वर मांगने से मेरी स्वामी-भक्ति हीन होगी।'

तब धरणेन्द्र बोले, 'हे रावण, तुम्हारी इस निस्पृहता ने तो मुझे और प्रसन्न कर दिया है।' ऐसा कहकर वे रावण को अमोघ विजया शक्ति और रूपविकारी अर्थात् रूप परिवर्तन की विद्या देकर स्वस्थान को लौट गए।

रावण भी अष्टापद पर्वत पर स्थित समस्त जिन बिम्बों की वन्दना कर नित्यालोक नगर को गया और वहाँ रत्नावली से विवाह कर पुनः लंका लौट गया।

उसी समय मुनि बाली को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। सुरासुर सभी ने आकर उनका केवलज्ञान महोत्सव मनाया, अनुक्रम से बाली ने भवोपग्राही कर्मों को क्षय कर अनन्त चतुष्टय प्राप्त कर मोक्ष गमन किया।

वैताढ्य पर्वत के ज्योतिषपुर नामक नगर में ज्वलनशिख नामक एक विद्याधर राजा राज्य करते थे। उनके रूप सम्पत्ति में लक्ष्मी तुल्य श्रीमती नामक रानी थी उसके गर्भ से विशाल लोचना तारा नामक एक कन्या हुयी। चक्रांक नामक एक विद्याधर राजा के पुत्र साहसगति ने एक बार तारा को देखा तो काम के वशीभूत हो गया। उसने तारा के पाणिग्रहण के लिए ज्वलनशिख के पास दूत भेजा। उधर किष्किन्धया के राजा सुग्रीव ने भी तारा की प्रार्थना कर ज्वलनशिख को दूत भेजा। कारण रत्न प्राप्त करने की इच्छा सभी करते हैं। साहसगति और सुग्रीव दोनों ही उच्च कुल जात थे, रूपवान और पराक्रमी भी थे। अतः किसे कन्या दूँ स्थिर न कर सकने के कारण ज्वलनशिख ने एक नैमित्तिक से पूछा। उसने कहा—'साहसगति स्वल्पायु है और सुग्रीव दीर्घायु है।' ज्वलनशिख ने सुग्रीव के साथ तारा का विवाह कर दिया। साहसगति तारा को भूल नहीं सकने के कारण अग्नि की भाँति विरह ज्वाला में दग्ध होने लगा।

तारा के साथ सुख भोगते हुए सुग्रीव के अंगद और जयानन्द नामक दिग्गज से दो पराक्रमी पुत्र हुए। उधर तारा का अनुरागी मन्मथ-पीड़ित साहसगति सोचने लगा मैं कब इस मृगनयनी सुन्दरी के पके हुए बिम्बफल से अधरों को चूमूँगा? कब मैं उसके स्तन कुम्भ का अपने हाथों से स्पर्श करूँगा? कब मैं उसे आलिंगन में लेकर उन स्तनों का मर्दन करूँगा। छल से या बल से जैसे भी हो मैं उसका हरण करूँगा। ऐसा सोचकर शेमुषी नामक रूप परिवर्तन की विद्या अर्जित करने के लिए चक्रांकपुत्र साहसगति हिमवत् पर्वत पर गया और एक गुहा में विद्या साधना में प्रवृत्त हो गया।

उधर पूर्व दिशा से जैसे सूर्य निकलता है उसी प्रकार लंका से दिग्विजय के लिए रावण निकला। अन्यान्य द्वीपवासी विद्याधर और राजाओं को वश में कर रावण पाताल लंका में गया। वहाँ चन्द्रनखा के पति खर ने विनीत और मधुर वाक्य से उपहार द्वारा सेवक की भाँति रावण की विशेष पूजा की।

वहाँ से रावण विद्याधर इन्द्र को जीतने चला। खर ने भी अपनी चौदह हजार सेना को लिए उसका अनुसरण किया। सुग्रीव ने भी स्व-सेना के साथ वायु के पीछे जैसे अग्नि जाती है उसी प्रकार राक्षसपति रावण का अनुगमन किया।

[क्रमशः

संकलन

॥ युवाशक्ति स्नेह और सृजन से जुड़े ॥

जब युवाशक्ति का चिन्तन कुण्ठित हो जाता है, उसका शक्ति प्रवाह विपरीत दिशा में चलने लगता है तब नव-निर्माण नहीं होता है। आज युवा पीढ़ी के सामने लक्ष्यहीनता, दिशाहीनता और मूल्यहीनता की स्थिति है। उसे अपने बौद्धिक ज्ञान को रचनात्मक प्रवृत्ति से जोड़ना होगा। आज तो उसका ज्ञान हिंसा, तोड़फोड़, विग्रह और विभेद में लग रहा है। आवश्यकता है कि यह ज्ञान प्रेम, करुणा, सहयोग, विनय, श्रद्धा, एकता, अखण्डता और संवेदनशीलता से जुड़े। युवा-पीढ़ी का मानस-सा बन गया लगता है कि वह बिना श्रम किये उसका लाभ चाहती है, बिना अध्ययन किये डिग्री चाहती है, बिना परिश्रम किये फल चाहती है, बिना सेवा किये सत्ता चाहती है। इसीलिए वह कुण्ठित है, त्रस्त है व तनावग्रस्त है। उसके स्वभाव में आक्रोश है आदर नहीं, उसके जीवन में जिद्दीपना है, जिन्दादिली नहीं, अध्ययन की जानकारी है, स्वाध्याय से उद्भूत विवेक नहीं। इसीलिए उसे उछलकूद, छीनाझपटी, आतंक, शोरगुल व तोड़फोड़ अच्छा लगता है। आवश्यकता है कि उसकी दृष्टि बदले और उसकी शक्ति प्रतिकार की बजाय प्यार और स्नेह से जुड़े, संहार की बजाय सृजन से जुड़े। यह तभी सम्भव है जब उसे सन्तों का सत्संग मिले, सद्शास्त्रों के स्वाध्याय का अवसर मिले, अपने अन्तर में झांकने की तकनीक मिले। इसकी व्यवस्था आज के शैक्षिक पाठ्यक्रम में की जानी चाहिए।

—डा० नरेन्द्र मानावत

जिनवाणी, मार्च १९९२

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

तीर्थंकर || फरवरी-मार्च १९९२

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'अस्तेय और मैं' (सुरेन्द्र बोथरा), 'अहिंसा और पर्यावरण' (डॉ० डी० आर० भण्डारी), 'मनुष्य और उसका आहार' (चिरंजीलाल बगड़ा)।

तुलसी प्रज्ञा || जनवरी-मार्च १९९२

इस अंक में है 'सप्तर्षियों से काल गणनाएँ' (डॉ० परमेश्वर सोलंकी), 'हिन्दी काव्य में पंच महाव्रत' (डॉ० देवदत्त शर्मा), 'जैन दर्शन और पाश्चात्य मनोविज्ञान की तुलना' (बी० रमेश जैन), 'जैन संस्कृति का विराट प्रतिबिम्ब : जैन-कला-दीर्घा' (विजयकुमार व किशनलाल), 'तेरापंथ का संस्कृत साहित्य : उद्भव और विकास' (मुनि गुलाबचन्द्र 'निर्मोही'), 'तेरापंथ धर्मसंघ का अवदान—आचार्य भिक्षु का राजस्थानी साहित्य' (मुनि सुखलाल), 'तीर्थंकरों के नामकरण का हेतु और उनका व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ' (मुनि विमल कुमार), 'On the Concept of Truth in Jainism' (Dr. B. K. Khadabadi), 'Non-violent Action in Jaina Ethics' (Nagendra Kumar Singh), 'Internal Forces of Life : Jain Philosophy and Modern Science' (J. S. Zaveri & Muni Mahendra Kumar).

शोधादर्श || नवम्बर १९९१

इस अंक में है 'भारतीय साहित्य के निर्माण में जैनों का योगदान' (स्व० डॉ० ज्योति प्रसाद जैन), 'कल्याण मन्दिर स्तोत्र के रचयिता' (स्व० अगरचन्द नाहटा), 'जैन दर्शन में लेश्या एवं विज्ञान सम्मत विद्युत् धारा : एक तुलनात्मक दृष्टि' (डॉ० कमला पन्त), 'वैदिक ब्राह्मणीय परम्परा में भगवान ऋषभ' (डॉ० रञ्जन कुमार), 'Sravakacara : Its Significance and Relevance in the Present Times' (Dr. B. K. Khadabadi), 'Environment and Religion' (Dr. Shashi Kant).

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

GOLAGHAT ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :
BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phone : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :
4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 38-5960

Branch Office :
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 5378
5578,5778

तित्थयर

वर्ष १५

मई १९९१ से अप्रैल १९९२

कथानक

	चित्रसेन व पद्मावती के प्रसंग में	८३
हेमचन्द्राचार्य	त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र	२१, ५१, ९१, ११४, १५१, १८८, २१६, २४२, २७७, ३१४, ३४२, ३६९

जैन पत्र-पत्रिकाएँ

	जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या	३०, ६३, ९५, १२७, १५८, २२३, २५४, २८७, ३१९, ३५०, ३७९

निबन्ध

उपाध्याय अमरमुनि	अनेकान्तवाद और विश्व दर्शन समन्वय	२०२
जैन, ऋषभचन्द्र 'फौजदार'	बुन्देल खण्ड में नियमसार की पाण्डुलिपियों की खोज	२७४
जैन, कमलेश	जैन पुराण साहित्य	१८
जैन, कुन्दनमल	दासानुदास पाहिल्ल श्रेष्ठी	२३१
	साहू नेमिचन्द्र	६७

जैन, महेन्द्रकुमार 'मनुज'	वैभार गिरि की ऐतिहासिक मुनिसुव्रत जिन प्रतिमा	३५
जैन, सागरमल	उच्चैर्नागर शाखा के उत्पत्ति स्थल एवं उमास्वाति के जन्म स्थान की पहचान	२५६
जैन, हेमन्त कुमार	भट्ट अकलंक कृत लघीयस्त्रय : एक दार्शनिक अध्ययन	१४४
महो० चन्द्रप्रभसागर	ध्यान : चित्त की एकाग्रता के लिए	२३६
मुनि कान्ति सागर	युग प्रवर श्री जिनदत्त सूरि	५
मुनि नेमिचन्द्र	विश्व शान्ति के सन्दर्भ में नारी की भूमिका	२७६
मुनि सुशील कुमार	जैन परम्परा में योग	१८,७२
मेहता, मुकुलराज	जैन दर्शन में काय विचार : दार्शनिक विवेचन	२२७
वाजपेयी, कृष्णदत्त	भारतीय वास्तु कला के विकास में जैन धर्म का योगदान	१३६
विद्यालंकार, सत्यदेव	भारतीय जीवन महानद के दो किनारे	६६
विश्नोई, रीता	पाण्डव पुराण में राजनैतिक स्थिति	३०३
शास्त्री, नेमिचन्द्र	जैन धर्म के प्रभावक पुरुष एवं नारियाँ	३२३, ३२५
संघवी, पं० सुखलाल	प्रतिभा मूर्ति सिद्धसेन दिवाकर	२६१
साध्वी सुरेखा श्री	पंचपरमेष्ठि पद निर्युक्ति	१०७
सूरिदेव, श्री रंजन	हिन्दी जैन भक्त कवियों की मधुर भावना	२६६

सोहनी, श्रीधर वासुदेव	सिद्धसेन दिवाकर कृत गुणद्वात्रिंशिका। एक विवेचन	१३१, १६३, १६५
	पुस्तक परिचय	
	रामयशो रसायन	३
	संकलन	
उपाध्याय अमरमुनि	मुक्ति क्या है	२५३
चन्दनमल 'चाँद'	जैन तत्वज्ञान एवं दर्शन के अध्ययन की समाज व्यवस्था करें	३४६
जैन, पृखराज एस लुँकड़	समाज को स्वावलम्बी एवं आत्म निर्भर बनावे	२८६
जैन, प्रेम सुमन	प्रकृति को संतुलित रखने के लिए आवश्यक	३४६
	प्राकृत भाषा और उसका साहित्य	२८
निजामउद्दीन	उत्सव/जयन्ती के माध्यम से जैन जागरण	१६१
भानावत, नरेन्द्र	युवाशक्ति स्नेह और सृजन से जुड़े	३७८
महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर	मन्दिर के अतिशय को सुरक्षित रखना होगा	३१८
योशी, अजय	क्रूरता है छोटे बच्चों को स्कूल भेजना	६१
शास्त्री, कैलाश चन्द्र	देश में आज उलटी गंगा बह रही है	१२५

चित्र

तीर्थंकर के माता-पिता, पाकबिड़रा २२६

तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी, वैभारगिरि,
राजगृह ३४

तीर्थंकर, मोसक्कुडि ३५४

देवकुमार जैन प्राच्य ग्रन्थागार, आरा
द्वारा प्रकाशित सचित्र जैन रामायण का
लोकार्पण २

पूँचड़ा का जैन धरोहर ६६

महावीर, कन्नानगुडि २६०

पेड़ता से भेजे गए विज्ञप्ति पत्र का एक
चित्र १६२

रामजी गन्धारिया का चौमुख मन्दिर,
शत्रुंजय १३०

वालाभाई मन्दिर, शत्रुंजय ६८

शासन देवियों सहित पार्श्वनाथ व
महावीर, खंड गिरि, उड़ीसा १६४

हेमाभाई भखतचन्द का मन्दिर, शत्रुंजय २५८

WB/NC 330

~~WB/NC-253~~

Vol. XV No. 12 **TITTHAYARA** **April 1992**

Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 24582/73